Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 6, Issue 1&2 - 2021, Pg. No. 5-16
Peer Reviewed Journal/ Refereed Journal

Research Article

ब्रिटिश अल्मोड़ा में कृषि तथा वन प्रशासन (1815.1947 ई0)

भारती बिष्ट

इतिहास विभाग हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद एम॰जे॰पी॰ रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उत्तर प्रदेश)।
DOI:https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

I N F O

E-mail Id:
bhartibishtrawal@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/0000-0002-5976-4676

Date of Submission: 2021-02-28
Date of Acceptance: 2021-03-07

सारांश

यद्यपि अंग्रेजों ने अल्मोड़ा जनपद में कृषि उपज में वृद्धि करके कृषि व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया लेकिन तब भी कृषि बढ़ती हुई आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकी क्योंकि बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से इस जनपद की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी थी। इसके अतिरिक्त कृषि के क्षेत्र में अधिक वृद्धि न होने का एक कारण यह भी था कि दुर्भिक्ष के वर्षों को छोड़कर यहाँ जमीन में सुधार एवं कृषि के विकास हेतु कोई कर्ज अथवा अग्रिम नहीं दिये गये। अतः प्रतिव्यक्ति दर के औसत से कृषि में काफी गिरावट आयी। पर्वतीय लोगों के आर्थिक जीवन से वनों का महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। वनों से उन्हें ईधन हेतु सस्ती लकड़ी, पत्तियाँ चारा, मकानों एवं कृषि औजारों के लिए सस्ती लकड़ी प्राप्त हो जाती थी, गोरखों के शासनकाल में यहाँ के जंगलों को काफी नुकसान पहुँचाया गया क्योंकि गोरखा प्राकृतिक सुरक्षा से बहुत प्रभावित थे। अतः उन्होंने आक्रमण में बाधक पहाड़ों की चोटियों के समस्त पेड़ों को कटवा दिया था। लेकिन वनों की सुरक्षा के क्षेत्र में अंग्रेज प्रशासक काफी निपुण थे। उनके द्वारा स्थानीय लोगों की वन सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा सुरक्षा के लिये पर्याप्त प्रयास किये गये। वन बहुमूल्य राष्ट्रीय सम्पदा बन गये थे, अतः उन्हें चारागाह अथवा खुले रूप से प्रयोग करने हेतु नहीं छोड़ा जा सकता था, लेकिन वनों की सुरक्षा हेतु ब्रिटिश प्रशासकों के लिये यह आवश्यक था कि वे यहाँ की जनता के सदियों से चले आ रहे अधिकारों में अतिक्रमण न करते, क्योंकि जीवन यापन के लिये पूरी तरह प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर अर्थव्यवस्था के लिये यह सर्वथा प्रतिकूल कदम था। ब्रिटिश प्रशासकों को चाहिए था कि वे यहाँ की ग्रामीण जनता को वनों के महत्व के विषय में समझाते लेकिन वे ऐसा करने में असमर्थ रहे।

मुख्य बिन्दु: अल्मोड़ा, गोरखा, निर्भर, जंगलात

प्रस्तावना

कृषि

सम्पूर्ण कुमाऊँ के तीन भाग है। पर्वतीय क्षेत्र भाबर तथा नैनीताल में तराई भाबर। जिला अल्मोड़ा का अधिकांश भाग पहाड़ी है। ये पहाड़ दो प्रकार के हैं निचले पहाड़ एवं ऊँचे पहाड़। जनपद की निचली पहाड़ी तलहटियॉ अधिक आबादी वाली थी और उनमें अधिकांश क्षेत्रों में खेती की जाती थी। जहां पहाड़ों की समतल चोटियॉ थी वहां आबादी नदियों की घाटियों के किनारे तक फैली हुई थी। जिले में कृषि की दशा में ऊँचाई और स्थिति के अनुसार अन्तर था। सबसे अच्छी खेती उन गांवों में होती थी जो तीन हजार से पांच हजार की फीट की ऊँचाई पर स्थित थे। खरीफ में मड़वा, झुंगरा (मड़वा और झुंगरा कुमाऊँ क्षेत्र के पहाड़ी जिले अल्मोड़ा में पैदा होने वाले मोटा अनाज हैं।) और धान पैदा किये जाते थे। जमीन की सिंचाई जहां सम्भव था गूलों (पानी की छोटी–छोटी नालियाँ) द्वारा अर्थात् नदी या स्रोतों से गूल निकालकर की जाती थी। इन गूलों के पानी को घराट (पन चक्की) द्वारा जाना जाता था। जितने पानी में एक घराट चलता था, उसे नापकर एक या

Copyright (c) 2021: Author(s). Advanced Research Publications

अधिक घराट की नहर कही जाती थी, लेकिन खेती का अधिकांश भाग असिंचित था।

एक ऊँची पहाड़ी चोटी उत्तर में कपकोट से अस्कोट तक फैली थी। इस खण्ड में मुख्यतः ग्लेशियर व ऊँचे पर्वत शिखर थे। अधिक ऊँची जगहों में खेती बहुत कम होती थी और इन ऊँची जगहों के लोग मुख्यतः व्यापार पर निर्भर रहते थे। इन स्थानों में एक ही फसल सामान्यतः गेहूँ, जौ व फाफर जून से नवम्बर के मध्य में पैदा होता था। खेती के तरीके पहाड़ी पर्यावरण के अनुकूल थे, यद्यपि कृषि उत्पादन जीविका हेतु था किन्तु कुछ अतिरिक्त अनाज का तिब्बत को व्यापार किया जाता था। आमतौर पर छः महीनों लायक अनाज उत्पादन तथा मछली, मांस, फल सब्जी व अन्य भोजनों से पूर्ति हो जाने के कारण कमिश्नर हेनरी रामजे ने (1856 ई0–1884 ई0) पहाड़ी किसानों को भारतीय किसानों में सम्भवतः सबसे बेहतर बताया था।

दुर्भाग्यवश 19वीं सदी में कृषि की दशा में हुई प्रगति के बारे में काफी कम जानकारी उपलब्ध है, यहां तक कि डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड भी 1887 ई0 में कृषि आंकड़ों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के कोई दस्तावेज नहीं खोज पाया था। अतः उस समय तक कृषि दस्तावेज तैयार नहीं किये जाते थे। अतः हमारे पास कृषि की उन्नति की जानकारी से सम्बन्धित कोई भी ऐसे मूल स्रोत नहीं हैं जिनमें कि कृषि सम्बन्धी आंकड़ों का विस्तृत विवरण हो इस सम्बन्ध में केवल कुछ बन्दोबस्त रिपोर्ट हैं लेकिन उनमें भी इस विषय में बहुत ही संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

कुमाऊँ क्षेत्र प्राचीन समय से ही कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। अतः जिला अल्मोड़ा भी इससे अछूता न रहा। यद्यपि इस जिले में कृषि कार्य किसी भी दशा में आसान नहीं था अपितु यह अत्यधिक मेहनत वाला व्यवसाय था। प्रत्येक घाटी की अपनी स्वयं की विशेषताएं थी। और लोगों को उसी के अनुरूप व्यवसाय का चुनाव करना पड़ता था। कई ऐसे तथ्य है जिनके कारणवश पहाड़ में खेती करना मैदान की अपेक्षा अधिक मुश्किल है। आंधी, भूस्खलन, जंगली जानवरों के आक्रमण तथा मनुष्य व जानवरों में ऊँची मृत्यु दर होना इत्यादि खेती में बाधक थे। इन बांधाओं का सामना प्रत्येक पर्वतीय निवासी को करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसाय हेतु पहाड़ में व्यक्तियों को ऊँची–ऊँची चोटियों को पार करना, तथा जानवरों (कृषि में उपयोग आने वाले) कृषि औजारों एवं खाद को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर कार्य करना पड़ता था। फसल को बड़े ही दुलर्भ मार्गों से होकर समीपवर्ती बाजार तक ले जाने में भी बहुत अधिक शक्ति की आवश्यकता होती थी। शायद इसी कारण अंग्रेज लेखक सिम्पल ने लिखा कि–अविकसित पहाड़ी भूखण्डों में (जैसे कुमाऊँ में) जीवन निर्वाह की समस्या बहुत ही कठिन थी। फिर भी कृषि ही यहां की आजीविका का मुख्य साधन था। जैसा कि तालिका–1 को देखने से स्पष्ट होता है कि इस पहाड़ी जिले में लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या पारिवारिक श्रम की मदद से ही खेती करती थी। कृषि मजदूरों की असाधारण रूप से कम उपस्थिति एक सामन्तवादी किसान समुदाय का चित्र प्रस्तुत करती है, जो वास्तविकता की जगह एक विश्लेषणात्मक वर्ग के रूप में ही अधिक प्रयुक्त हुआ है।

प्राकृतिक व अन्य बाधाओं के बावजूद कृषि व्यवसाय 19 वीं सदी के प्रारम्भ तक खूब फलता–फूलता रहा। तत्पश्चात् गोरखा राज्य की बर्बरता का युग आया जिसके दौरान कृषि की अत्यधिक क्षति हुई, किन्तु सौभाग्यवश गोरखा शासन थोड़े ही समय तक (लगभग 25 वर्ष) रहा। गोरखों के बाद 1815 ई0 में यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में आ गया और अंग्रेजी राज्य के स्थापित होने के बाद खेती में पर्याप्त प्रगति दृष्टिगोचर होने लगी। 1816 ई0 से 1822–23 ई0 तक खेती में 1/3 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी और यह वृद्धि आने वाले वर्षों में जारी रही। पातीराम ने लिखा है कि ब्रिटिशशासन काल में कृषि व्यवसाय में अत्यन्त वृद्धि हुई और मिट्टी सोने में बदल गयी और रेगिस्तान बगीचे में।'' हेनरी रामजे की प्रोत्साहन देने की नीति तथा आबादी में वृद्धि होने के कारण कृषि क्षेत्र में काफी प्रगति हुई।

1902 ई0 में अपनी बन्दोबस्त आख्या में गूज ने पहाड़ में कृषि समस्याओं तथा कृषि व्यवसाय के भविष्य के विषय में लिखा था कि–''अधिकांश गांवों में लगभग एक सी व्यवस्था थी। कुछ स्थानों के लिए सभी चीजों की आवश्यकता होती थी, कुछ जगहों में जंगल नहीं थे। कई जगह ऊँचाई में पहाड़ तो काफी थे, पर उपजाऊ भूमि नहीं थी, कुछ जगहों में उपजाऊ भूमि थी पर कोइ चारागाह नहीं थे। इन सब विभिन्नताओं के होते हुये भी इन सब स्थानों में आश्चर्यजनक रूप से एकता थी उदाहरणार्थ पहाड़ के उत्तरी और गहरे निचले भागों में भूमि उपजाऊ थी जबकि दक्षिणी गहराईयों में सूरज जायदा चमकता था। जब 6000 फुट से ऊपर खेती की जाती थी तो कृषि के स्तर तथा उनसे प्राप्त पैदावार दोनों में काफी गिरावट आती थी। ऐसे स्थानों में खेती की देखभाल करना काफी कठिन था जहां पर कि वर्फ रहती थी पहाड़ की मुख्य फसल मड़वा व धान है। मड़वा का क्षेत्र धान के क्षेत्र से अधिक रहता है। रवि की मुख्य फसलें गेहूं व जौ है। गेहूं का क्षेत्र जौ के क्षेत्र से अधिक रहता है सिंचित भूमि बिना किसी बांधों के गेहूं व धान पैदा करती है और कही–कही मौसम के अनुकूल गहराई वाले स्थानों में गन्ना भी दिखायी देता है। नदियों के उपजाऊ तटों जैसे–कोसी, पश्चिमी रामगंगा, गोमती गरूड़, कुठाड़ तथा कुछ अन्य स्थानों में ऊपरी जमीन पर कई किस्म का धान पैदा किया जाता है, परन्तु यह धान अधिक कीमती नहीं होता है। सबसे अच्छी श्रेणी का धान बासमती, हंसराज और साल है। ''साल निचले भारत के सूखदास से मिलता–जुलता है। ऐसे धान की इन जातियों के पौधे रोपाई द्वारा लगाये जाते है। धान की खेती सिंचाई वाले स्थानों में की जाती है। कुछ घटिया किस्म के अनाज भी पैदा किये जाते है जिनको ''झुंगरा'' (किन्हीं स्थानों में इसे ''मादिरा'' भी कहा जाता है) एवं ''कौणी'' के नाम से जाना जाता है। घर के नजदीक कई किस्म की सब्जियां उगाई जाती है जिसमें से पिनालु सबसे प्रमुख है। प्रत्येक गांव में थोड़ी बहुत तम्बाकू भी लगायी जाती है। निचले गांवों में कभी–कभी ''मसूर'' भी पाया जाता है। लेकिन चना यहां के लिए पूर्णतया अनजान है। गेहूँ झूस वाला तथा बिना झूस वाला होता है। झूस वाला गेहूँ मूलायम एवं अच्छे किस्म का होता है जिसे ''दावतखानी'' के नाम से जाना जाता है। बर्फीले स्थानों में जो 6000 फीट या इससे ऊँचे हों वहां रवि में जौ बोया जाता है। उसके पश्चात् खरीफ में कापार या चना बोया जाता है। गेहूं 7000 फीट से ऊपर नहीं पाया जाता है, परन्तु ऊँचे पर्वत की घाटियों में

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

जो कि ग्लेशियर के नजदीक हैं एक उत्तम किस्म का गेहूं खरीफ की फसल में पैदा किया जाता है, जो ''नापाल'' के नाम से जाना जाता है। यह गेहूं मई में बोया जाता है और पुनः फिर नवम्बर में बोया जाता है। यह दारमा एवं व्यास घाटियों की प्रमुख फसल है। असिचिंत भूमि में सदैव निर्विघ्न रूप से बारी–बारी से फसल बोयी जाती है। पहले खरीफ की फसल में धान व झुंगरा बोया जाता है तत्पश्चात् रवि में गेहूँ व जौ बोया जाता है और फिर दूसरे खरीफ में मड़वा बोया जाता है इस प्रकार एक रवि की फसल को छोड़ दिया जाता है। और इस क्रम में पुनः अगली खेती धान से शुरु होती है। गांवों की खेती को दो भागों में बांट दिया जाता है स्थानीय भाषा में जिसे ''सार'' कहते है जिनमें से एक सार धान के लिए व दूसरी मड़वे के लिए छोड़ दी जाती है जिससे सदैव खेती होती रहती है और खरीब की सार नहीं छोड़नी पड़ती है क्योंकि खरीब में मड़वा तथा बीन व दालें जैसे–उड़द, भट, गहत इत्यादि भी मड़वे के साथ ही पैदा हो जाते हैं। इन दालों को मड़वा के साथ इसलिए बोया जाता है जिससे कि जमीन की खाद नष्ट होने से बच जाय तथा दालें भी प्राप्त हो जाय। मौसम अनुकूल रहे तथा समय–समय पर वर्षा होती रहे तो फसल अच्छी हो जाती है। यदाकदा ही फसल खराब होती है।

अल्मोड़ा जिले में कुछ स्थानों जैसे सोमेश्वर की घाटी, जोरासी, बागेश्वर के कुछ समतल खेतों को छोड़कर सारी भूमि पहाड़ी है, अतः यहां खेत चौड़ी सीढ़ीनुमा आकार में बनते हैं जिनको बनाने में काफी परिश्रम करना पड़ता है। इसमें पत्थरों को चुनकर एक दीवार खड़ी की जाती है, फिर ऊपर की ओर से जमीन को खोद कर नीचे की ओर फेंका जाता है। पहाड़ में मिट्टी की तह पतली होती है क्योंकि यहां के खेत पत्थरों के ऊपर मिट्टी की पतली तह बिछाकर बनते हैं। इन खेतों की दीवारों की बराबर रख–रखाव करनी पड़ती है। सबसे अच्छे खेत तलांव (निचली–भूमि) की सेरा की जमीन है, जहाँ भूमि अधिकतर समतल, पानी सुलभ एवं स्थान गर्म होता है। अच्छे किस्म का चावल भी यहीं पैदा किया जाता है। पनछांड़ तलांव कुछ ऊपर होता है यदि वर्षा पर्याप्त न हो तो पनछांड़ तलांव की जमीन को नहर से समय–समय पर सींचा जाता है। ऊपर वाले खेतों को उपराऊँ कहा जाता है जो गेहूँ, जौ जैसी खेती के लिए उपयुक्त होते हैं। इन उपराऊँ खेतों में जहां पर पानी का अभाव होता है उसे ''उखर'' कहते है। इनमें बहुत कम खेती की जाती है। सबसे उपेक्षित ढूंग का खेत ''इरजान'' है जिसकी मेंड़ की दीवारों तथा उस खेत को खोदने व उसमें खाद देने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता और उसे दो–दो तीन–तीन साल के लिए परती छोड़ दिया जाता है। तीन हजार फुट से पांच हजार फुट का स्थान यहां खेती के लिए सबसे उपयुक्त है। अस्कोट और कपकोट को मिलाने वाली रेखा से ऊपर के ''भोट प्रदेश का क्षेत्रफल जिले का तिहाई था तो भी वहां की कृषि की भूमि काफी कम थी। पशुपालन कृषि का पूरक था क्योंकि पशुओं के गोबर से खेतों को खाद मिलती थी जिससे खेतों की उर्बरता बढ़ती थी। जिले में कत्यूरी राजवंश के वंशज अस्कोट के रजवार ही बड़े तालुकदार थे वरना 95 प्रतिशत हिस्सेदार या जमींदार 10 एकड़ से कम के ही मालिक थे जिनमें से 50 प्रतिशत के पास तो. 3 एकड़ से भी कम जमीन थी।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि कृषि ही इस जिले की मुख्य आजीविका थी। प्रतिहजार में से 924 आदमी इस पर गुजर करते थे। जिसकी पुष्टि तालिका नं॰ 2 होती है।

वन प्रशासन

देश में जंगलों को हमेशा राज सम्पत्ति माना जाता रहा है। पहाड़ में जंगलों का लोगों के आर्थिक जीवन से महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। अंग्रेजों द्वारा कुमाऊँ में राज्य स्थापित करने के पश्चात् कमिश्नर ट्रेल ने जंगलों में इमारती लकड़ी और बांस को सरकार के प्रयोग के लिए आरक्षित करने की संस्तुति दी जबकि छोटे घने जंगलों को लोगों के लिए खुला रखा गया। ब्रिटिश राज्य के पहले तीन वर्षों में जंगलात के करों को व्यापारिक आधार पर निर्धारित किया गया और बाद में ट्रेल ने जमीदारों से जंगलात कर वसूल किये।

वन प्रशासन का विकास तथा उद्देश्य

पेड़ काटने के लिए ठेके की व्यवस्था कुमाऊँ क्षेत्र में 1858 ई0 तक चलती रही जब तक कि इसके विरुद्ध सख्त कदम नहीं उठाये गये। 1855 ई0 से 1861 ई0 के बीच रेलवे स्लीपरों की अत्यधिक मांग के कारण पर्वतीय जंगलों से साल के वृक्षों का कटान वृहत संख्या में किया गया। रेलवे स्लीपरों हेतु वनों को नष्ट किये जाने से सरकार में कुछ चेतना पैदा हुई कि इमारती वृक्षों की सुरक्षा की जाय। अतः तत्कालीन कुमाऊँ कमिश्नर हेनरी रामजे ने, जो कि जंगलात का प्रथम कन्जरवेटर भी था इस गम्भीर स्थिति को समझा और उसने तुरन्त जंगलों को नष्ट होने से बचाने के लिए कठोर कदम उठाये।

रामजे के समय में वनों की रक्षा का काम निरन्तर बढ़ता गया। रामजे ने स्वयं जाकर काटे गये पेड़ों की जांच की तथा उसने बारी–बारी से वनों में पेड़ काटे जाने की व्यवस्था को प्रारम्भ किया इसके अतिरिक्त काटने से पहले पेड़ में घन से निशान बनाने की प्रणाली को भी लागू किया।

1868 ई0 में मेजर पियर्सन ने जंगलों के क्षेत्रों का कार्यभार ग्रहण किया, किन्तु उसने तत्कालीन कार्य व्यवस्था में बहुत ही कम परिवर्तन किये। रामजे की जंगलात नीति के विषय में पियर्सन ने अपनी आख्या में लिखा है कि.....पिछले दो महिनों के दौरान मेरा अधिकांश समय जंगलों में व्यतीत हुआ, और मैं इस बात को देखकर बहुत ही प्रभावित हुआ कि जंगलों में एक पूर्ण व्यवस्था लागू की गयी थी जिसे अधिकारियों द्वारा लागू किया गया रामजे की सेवाओं का मूल्यांकन करना बहुत कठिन है और मुझे विश्वास है कि यह कहना अधिक नहीं होगा कि कोई भी अधिकारी इतनी स्थानीय जानकारी नहीं रखता जितना कि रामजे रखते थे। मैं यह भी कहना चाहूंगा कि कदाचित भारतवर्ष में वनों के रख–रखाव में कहीं भी इतनी प्रगति नहीं की गयी जितनी कि कुमाऊँ और गढ़वाल में साल के जंगलों में रामजे के द्वारा की गयी थी।

1868 ई0 से पूर्व सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र में वनों से सम्बन्धित कोई विभाग नहीं था। रामजे के समय में ही 1868 ई0 में पहली बार कुमाऊँ क्षेत्र के लिए वन–विभाग की स्थापना की गयी, जिसका अध्यक्ष ''कन्जरवेटर ऑफ फारेस्ट'' होता था। कुमाऊँ क्षेत्र में जंगलात को व्यवस्थित करने में काफी समय लगा। इस कार्य हेतु नियुक्त अधिकारियों को सर्वप्रथम

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

सरहदों की जांच करनी पड़ी। जंगलों को अग्नि तथा अन्य नुकसानों से बचाने हेतु भी नयी व्यवस्थाएं लागू करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त जंगलों में बहुमूल्य पेड़ लगाने के लिए भी जांच करनी पड़ी तथा उन लोगों के साथ सख्ती से निपटने का कार्य भी करना पड़ा जो अनियन्त्रित रूप से लकड़ी का कटान करते थे तथा उन ठेकेदारों से भी जो कि लम्बे समय से यह कार्य करते चले आ रहे थे।

अनेक वर्षों तक वन विभाग जंगलों को बढ़ाने के बजाय जंगलों की ''सुरक्षा'' के कार्य में व्यस्त रहा और यह आवश्यक सुरक्षा नीति जंगलात प्रशासन की कुंजी थी लेकिन इसी नीति ने स्थानीय निवासियों के दिलों में रोष उत्पन्न कर दिया।

1815 ई0 से 1878 ई0 के बीच पहाड़ के वन पर्याप्त मात्रा में सुरक्षित रहे क्योंकि इन सालों में सरकार ने भाबर के साल के वनों का दोहन किया। प्रारम्भ में वनों के सीमांकन की कोई व्यवस्था नहीं थी। 1873 ई0 में रानीखेत तथा 1875 ई0 में अल्मोड़ा के वनों को सीमांकित किया गया। 1878 ई0 में ''इण्डियन फारेस्ट एक्ट'' पारित हुआ। इसी अधिनियम के अधीन 26 फरवरी 1879 ई0 के गजट में सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र का 638 वर्गमील क्षेत्र आरक्षित घोषित किया गया। इन आरक्षित जंगलों को ''प्राचीन आरक्षित'' का नाम दिया गया। यहीं पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पर्वतीय चरवाहों को इन जंगलों में अपने जानवरों को चराने की निःशुल्क छूट थी तथा लोगों को वन उपज को अपने प्रयोग में लाने जैसे चटाईयों व टोकरियों इत्यादि बनाने की अनुमति थी।

1885 ई0 में कुंमाऊँ आयरन कम्पनी को अनुदान में दी गयी भूमि में से कुछ भूमि को आरक्षित किया गया। कुमाऊँ आयरन कम्पनी के पास जंगलों का एक बड़ा भाग मंजूरी के रूप में था 1892 ई0 में अल्मोड़ा जिले में माचौर, भतरोंच, स्यूनी, वेलेख, कटलेख, गणयाध्यौली, कारचूली को चैलियोन, चौबटिया, पढौली, द्वारसों, स्याही देवी तथा एड़द्यौ के वनों को सुरक्षित वन घोषित किया गया।

सन् 1880 ई0 से 1890 ई0 तक वन राजस्व को चौकी प्रणाली द्वारा जमा किया जाता था, जिसके अन्तर्गत समानान्तर क्रम में दो डिपो बनाये जाते थे। पहले डिपो में धन वसूल करके इसे पास किया जाता था तथा दूसरे डिपो में इसकी जांच की जाती थी। इस अवधि के पहले भाग में (1880 ई0 से 1885 ई0 तक) एक नियमित वार्षिक योजना के द्वारा पेड़ों का कटान किया जाता था, जिसके अन्तर्गत काटे गये पेड़ों की संख्या वन सम्बन्धी विभिन्न सुधारों का भी विवरण उपलब्ध रहता था। पहली नियमित कार्य योजना की स्थापना 1886 ई0 में एक अंग्रेज अधिकारी हैरल द्वारा की गयी थी, यह योजना 1893 ई0 तक जारी रही लेकिन बाद के वर्षों में एक अन्य अधिकारी ब्राइनेट द्वारा तैयार नयी कार्य योजना लागू की गयी।

1893 ई0 का वर्ष वन प्रशासन के क्षेत्र में विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। पं॰ गोविन्द बल्लभ पन्त के अनुसार कुमाऊँ के इतिहास में इस वर्ष का 17 अक्टूबर का दिन ''लाल पत्र दिवस'' (रैड लेटर डे) माना जायेगा। 17 अक्टूबर, 1893 ई0 को सरकार द्वारा एक अधिनियम जारी किया गया जिसके द्वारा समस्त वन तथा बेकार पड़ी जमीन जो कि गांवों के नाप क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं थी अथवा पहले आरक्षित (रिजर्व) वनों को संरक्षित वन (प्रोटेक्टेड) घोषित किया गया, हालांकि इस अधिनियम की धारा 28 के अनुसार आवश्यक जांच पड़ताल नहीं की गयी। अतः अल्मोड़ा जनपद में भी यह अधिनियम लागू हो गया इस प्रकार अब जिला संरक्षित वन के अन्तर्गत बर्फ से ढकी समस्त चोटियां, चट्टान, घाटियां, नदियों के तट, तालाब मन्दिरों की भूमि, समस्त मकानों की नजदीक की भूमि, नाप जमीन के बीच पड़ी बेकार जमीन, शिविर मैदान (कैम्पिंग ग्राउण्ड), ऐसी जमीन जो बन्दोबस्त के बाद आबाद की गयी हो, सड़कें, रास्ते, गढ़्ढे सड़कों के किनारे स्थित दुकानें तथा डाक बंगलों के आहते इत्यादि की समस्त भूमि आ गयी।

जिला सुरक्षित वनों की व्यवस्था के लिए बनाये गये नियमों के अधीन इन जंगलों का प्रशासन डिप्टी कमिश्नर कुमाऊँ के हाथों में दे दिया गया और साधारण पर्यवेक्षण का कार्य पश्चिमी वृत्त के कन्जरवेटर आफ फारेस्ट के सुपुर्द किया गया। विज्ञप्ति संख्या 846–एफ0–638–72 दिनांक 24 अक्टूबर 1894 ई0 के आठ विशेष के पेड़ों को आठ पेड़ आरक्षित प्रणाली द्वारा आरक्षित घोषित किया गया। ये पेड़ थे– देवदार, सरों (साइप्रस), चीड़, बांस, साल, शीशम, टुन तथा खैर इत्यादि। विज्ञप्ति संख्या 843–एफ–638–69, दिनांक 24 अक्टूबर, 1894 ई0 के द्वारा इन जंगलों के पदार्थों के इस्तेमाल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जिसके कुछ मुख्य प्राविधान नीचे दिये जा रहे हैं।

1. कोई भी व्यक्ति न तो आरक्षित पेड़ों को काटेगा–अथवा बिना लाइसेन्स के (केवल ऐसे चीड़ के पेड़ों को छोड़कर जिनकी कि गोलाई–मध्य लम्बाई से 3 फीट या इससे भी अधिक हो तथा जो सड़क से 100 फीट के अन्दर स्थित न हो) नहीं हटा सकता।
2. कोई भी व्यक्ति आरक्षित पेड़ों को नहीं काटेगा अथवा नहीं हटायेगा केवल उस दशा को छोड़कर जब तक कि पेड़ के स्थान से पांच मील के अन्तर्गत उस लकड़ी का उपयोग वास्तविक कृषि अथवा घरेलू कार्य हेतु किया जा रहा हो।
3. डिप्टी कमिश्नर द्वारा दिये गये लाइसेन्स की शर्तों के अनुसार अन्य मामलों को छोड़कर इमारती लकड़ी हेतु पेड़ों को काटना तथा वन उत्पादों का व्यापार निषिद्ध कर दिया गया।
4. एक फीट छः इंच से अधिक मोटाई वाले पेड़ों की शाखाओं को चारे अथवा खाद के लिए काटने की अनुमति है।
5. ऐसी काश्त (खेती), जिसके लिए पेड़ों को काटने की आवश्यकता पड़े, तब तक अनुमति नहीं दी जायेगी जब तक कि उसके लिए डिप्टी कमिश्नर द्वारा लिखित अनुमति प्रदान न की गयी हो।
6. बिना डिप्टी कमिश्नर के लिखित आदेश के कोई भी व्यक्ति जंगली जानवरों को पकड़ने के लिए जाल अथवा फन्दा नहीं लगायेगा।
7. डप्टी कमिश्नर द्वारा प्रदान किये गये लाइसेन्स में उल्लिखित शर्तों को छोड़कर कोई भी व्यक्ति शिकार हेतु न तो जंगल में जायेगा तथा न ही किसी जानवर को मारने हेतु गोली चलायेगा।

जैसा कि उपर्युक्त प्रावधानों से स्पष्ट है कि काश्त (खेती) बड़ाने, पेड़ों को काटने अथवा उनकी शाखा काटने जंगली जानवरों का शिकार करने तथा मछली मारने पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये। अतः सरकार के इन प्रयासों के कारण उन स्थानीय

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

ग्रामीणों में असन्तोष तथा नाराजगी होना स्वाभाविक था जो कि काफी पुराने समय से इन वनों में जाने तथा वन उत्पादों का इस्तेमाल करने के आदि थे।

1897 ई0 में पश्चिमी वृत्त के कनजरवेटर ऑफ फारेस्ट ने वार्षिक प्रशासनिक आख्या में सुझाव दिये कि सुरक्षित वनों को विभिन्न भागों में विभाजित किया जाना चाहिए ताकि ऐसे वन जो व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो अथवा जो लकड़ी आपूर्ति के प्रमुख साधन हों को वन–विभाग के सुपुर्द किया जा सके, लेकिन तत्कालीन स्थानीय सरकार इस विचार के विरुद्ध थी। अतः इन प्रस्ताव को रद्द कर दिया गया। इसी प्रकार का प्रस्ताव 1900 ई0 में फारेस्ट कनजरवेटर द्वारा पुनः रखा गया लेकिन सर एन्टोनी मेक्डोनेल ने इसको प्रस्तावित नहीं होने दिया, लेकिन आखिरकार जंगलात विभाग ने स्थानीय सरकार को इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने के लिए प्रभावित कर ही दिया अतः 5 अप्रैल 1903 ई0 को शासकीय आदेश संख्या 262–14–264 बी द्वारा एक नया अनुदेश जंगलों के विभाजन हेतु जारी किया गया।

इस अधिनियम द्वारा वनों को दो भागों में बांट दिया गया–क. बन्द सिविल वन, ख. खुले सिविल वन इसमें यह कहा गया कि बन्द सिविल वनों में वे क्षेत्र शामिल होंगे जिन्हें सरकार पुनर्जनन और पेड़ों के संरक्षण के लिए आवश्यक समझे आरक्षित पेड़ों को काटने के लिए डिप्टी कमिश्नर की स्वीकृति आवश्यक होगी। अन्य प्रकार के पेड़ों को काटने की अनुमति पटवारी तथा पधानों द्वारा दी जा सकती है। ग्रामीणों को इस बात की स्वतन्त्रता दी गयी कि प्रचलित प्रथा के अनुसार वे घास को जला सकते थे। इस प्रयोजनार्थ अल्मोड़ा जिले में 450 वर्ग मील का क्षेत्र निर्धारित किया गया।

सरकार की वन नीति का प्रारम्भिक प्रतिरोध

वनों पर राज्य के नियन्त्रण की स्वीकृति तथा इसके विपरीत ग्रामीणों के पारम्परिक अधिकारों में कमी का दुर्भाग्य पूर्ण परिणाम यही हुआ कि वन और जन के बीच अलगाव की स्थिति बढ़ती चली गयी। प्रारम्भ में लोग अपने अधिकारों में किये गये अतिक्रमण को चुपचाप सहते रहे परन्तु सरकार के बढ़ते हुए अतिक्रमण ने उन्हें असन्तुष्ट होने के लिए बाध्य कर दिया। सरकार की वन नीति की व्यापक रूप से निन्दा हुई। 1907 ई0 में अल्मोड़ा में मेजर जनरल ह्वीलर की अध्यक्षता में एक सभा की गयी जिसमें सरकार की वन नीति का कड़ा विरोध प्रस्ताव पास किया गया, जिसे रायबहादुर पं॰ बद्रीदत्त जोशी ने प्रस्तुत किया।

इस विरोधी प्रदर्शन के जबाव में सरजोन हैवेट ने बरेली दरवार में 2 नवम्बर, 1908 ई0 को एक घोषणा प्रसारित की। जिसमें पुनः दोहराया गया कि–''सरकार का कुमाऊँ के जंगलों से धन प्राप्त करने का कोई विचार नहीं है तथा जो कुछ लाभ का धन है उसे सरकार कुमाऊँ के लोगों की भलाई में खर्च करना चाहती है, लेकिन उसका विचार वनीय क्षेत्र को बरबाद होने से रोकना तथा बेकार पड़ी जमीन को फारेस्ट एक्ट के अधीन लाने का था।

ग्रामीणों द्वारा कटान, चरान तथा वन सम्बन्धी कर्तव्यों के नये नियमों की अवहेलना तालिका नं॰–3 निरन्तर बढ़ते हुये अंसतोष का स्पष्ट प्रमाण था। कुमाऊँ वन वृत्त में पश्चिमी वन वृत्त तथा पूर्वी वनवृत्त की अपेक्षा दण्डित किये गये व्यक्तियों की संख्या असाधारण रूप से अधिक थी। 1898 ई0 से 1908 ई0 के दशक में अल्मोड़ा जिले में हर साल औसतन 416 व्यक्तियों की रकम न देने हत्या तक के अपराध में दण्डित किया गया। गश्ती दलों की अपर्याप्तता के कारण वन नियमों के उल्लघंन की अनेक घटनाएं प्रकाश में नहीं आयी।

सर जॉन हेवेट, सर जोन केम्बिल तथा मिस्टर कलटेरबक गहरे दोस्त थे। ये तीनों शिकार खेलने के काफी शौकिन थे तथा यदा कदा घने जंगलों में साथ–साथ जाते थे। इन्होंने जन आबादी से दूर इन घने काले जंगलों में सुरक्षित वनों को आरक्षित करने की योजना बनायी। इसी योजना के प्रभाव स्वरूप सरकार ने सुरक्षित वनों को आरक्षित वनों में बदलने के लिए एक और कदम उठाया जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र के जंगलों के बन्दोबस्त की कार्यवाही की गयी जंगलात का यह बन्दोबस्त 1911 ई0 में स्टाईफ द्वारा लागू किया गया। जो 1917 ई0 तक जारी रहा।

17 अप्रैल, 1912 ई0 को हल्द्वानी में अस्पताल खुलने पर अपने विदाई सन्देश में स्टाईफ ने जनता से कहा कि मैने जो वन बन्दोबस्त किया है वह सर जोन हैवट द्वारा बनायी गयी नीति के आधार पर किया। उसने कहा कि भारत सरकार द्वारा मन्जूर इस योजना के अधीन जंगलों को तीन श्रेणियों ''ए'', ''बी'' तथा ''सी'' में विभाजित किया जायेगा। श्रेणी ''ए'' में वे क्षेत्र होंगे जिसमें मुख्यतया लोगों की आवश्यताओं हेतु तथा बाहरी जनता को बेचने हेतु इमारती लकड़ी पैदा की जायेगी। इन वनों की व्यवस्था वन विभाग द्वारा किये जाने का प्रस्ताव है। इन वनों में जानवरों को चराने तथा वन सम्पदा लेने की स्वीकृति आरक्षित वनों के लिए लागू नियमों के अधीन होगी। श्रेणी ''बी'' के वनों की व्यवस्था केवल वन विभाग द्वारा की जायेगी लेकिन इनमें श्रेणी ''ए'' के वनों की तुलना में कम नियन्त्रण रहेगा इसके अतिरिक्त श्रेणी ''बी'' के वनों में लकड़ी तथा चारा सुरक्षित रहेगा और इनमें नयी जोत (खेती बढ़ाने) के कड़े नियम होंगे। इस बन्दोबस्त के अधीन घास काटने जानवरों को चराने, छोटी वन सम्पदा उठाने तथा गिरी हुई लकड़ियों को प्रयोग के लिए ले जाने विषयक ग्रामीणों के अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाये जायेंगे। कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को छोड़कर जिन्हें कि विज्ञापित किया जायेगा, पेड़ों की शाखाओं को काटने पर कोई दखल नहीं दिया जायेगा। श्रेणी ''सी'' के वन बेकार पड़ी जमीन के अन्तर्गत होंगे तथा ये सरकारी नियन्त्रण के बाहर रहेंगे, लेकिन इनमें किसी को भी मालिकाना अधिकार नहीं होंगे।

लेकिन जंगलात के बन्दोबस्त अधिकार इस विभाजन पर भी स्थित नहीं रह सके। सरकार द्वारा श्रेणी ''सी'' के वनों को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया तथा श्रेणी ''बी'' के क्षेत्रों को श्रेणी ''ए'' में मिला दिया गया। श्रेणी ''ए'' तथा ''बी'' के आरक्षित वनों की भूमि में वन विभाग का कड़ा नियंन्त्रण कर दिया गया जिसके कारण नियमों के अधीन इस आरक्षित वनों के क्षेत्र में कोई भी जमीन खेती के काम नहीं लायी जा सकती थी। अतः इसके परिणामस्वरूप अल्मोड़ा जिले में 969 वर्गमील क्षेत्र आरक्षित वन (रिजर्व) घोषित कर दिया गया। इसका प्रशासन कुमाऊँ वन वृत्त (कुमाऊँ फारेस्ट सर्किल) द्वारा किया जाता था। 1911 ई0 से 1918 के बीच बनाये

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

गये वन बन्दोबस्त में वनों को निम्न श्रेणियों में दिखाया गया था।

सिविल वन डिप्टी कमिश्नर के नियन्त्रण में बने रहे, जबकि नवीन आरक्षित तथा प्राचीन आरक्षित वनों का प्रबन्ध वन विभाग द्वारा किया जाता था।

एक महत्वपूर्ण अध्ययन हाल ही में सामने आया कि औपनिवेशिक काल में कुमाऊँ के अन्य जिलों की भांति अल्मोड़ा जिले में बेगार ''नाम से जो शोषक प्रथा प्रचलित थी, उसमें वन विभाग के जन्म के बाद जबर्दस्त वृद्धि हुई। वनों के संरक्षण तथा निरीक्षण ने वनाधिकारियों के दौरों की संख्या को काफी बड़ा दिया था इन दौरों में ग्रामीणों से उतार तथा बर्दायश ली जाती थी। कुमाऊँ वन कष्ट समिति के शब्दों में ''कुमाऊँवासियों'' की वन बन्दोबस्त के विरुद्ध शिकायत सर्वाधिक उतार पर केन्द्रित थी। जो कि वनों पर सामुदायिक अधिकारों की कमी से जुड़कर एक अप्रत्याषित और बड़ा भार बन गया था। ग्रामीण अपने सुखद अतीत की ओर देखते थे, जब कि उन्हें अपने वनों में जाने की पूरी छूट थी और राज्य की ओर से दिया जाने वाला दखल नगण्य था। इन भावनाओं को ऊटी में पुरातत्व विभाग में लिपिक के पद पर कार्यरत एक अल्मोड़ा वासी ने इस प्रकार व्यक्त किया था–पुराने समय में अन्य लोगों की तुलना में ग्रामीणों को अधिक सुविधायें प्राप्त थी तथा वनों और चारागाहों के स्वतंत्र उपयोग को रोकने हेतु कोई नियम न थे, जैसे कि अब हैं। अब समय काफी कठिन है और अनेक कानून और कर लाद कर कठिनाई बढ़ा दी है। ग्रामीण जीवन वर्तमान नियमों और नियन्त्रणों की कठिनाइयों से भरा है। वे न अपने ईधन के लिए पेड़ काट सकते हैं, न चारे के लिए पत्तियां, लेकिन दौरे पर आने वाले अधिकारी अपने घोड़ों के लिए अच्छी घास, भोजन बनाने को ईधन तथा अपने और कर्मचारियों के लिए दूध आदि मुफ्त में प्राप्त करने के लिए दबाव डालते हैं जबकि अपनी मेहनत और पैसों से भी इन चीजों को वे अपने लिए मुश्किल से जुटा पाते हैं। बीस साल पहले ग्रामीण जीवन में जो सुविधायें उपलब्ध थी वे आज नहीं है। फिर भी अधिकारी उसी प्रथा के विषय में सोचते हैं जो कि गांव की सम्पन्नता के समय प्रचलित थी।

वन आन्दोलन तथा कुमाऊँ परिषद

वन आन्दोलन के बाद सम्पूर्ण कुमाऊँ में इसका बड़ा विरोध किया गया। असन्तुष्ट ग्रामीणों ने जंगलों में आग लगाकर अपना रोष व्यक्त किया। 1916 ई0 में कुमाऊँ परिषद् अस्तित्व में आयी जिसने वन समस्याओं का कार्य अपने हाथ में ले लिया। स्थानीय पत्रकारों, वकीलों तथा बुद्धिजीवियों की इस परिषद् में, जिसके अध्यक्ष प्रारम्भ में रायबहादुर या सरकार परस्त व्यक्ति रहे, वन कष्टों की वृद्धि तथा बेगार के कारण महत्वपूर्ण बदलाव आये। गांव–गांव में हो रहे विरोधों तथा अप्रत्यक्ष रूप से देश के अन्य हिस्सों में उभरने वाले आन्दोलनों ने कुमाऊँ परिषद् के मूल स्वरूप को ही बदल दिया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण अल्मोड़ा के श्री बद्रीदत्त पाण्डे का व्यक्तित्व है। कुमाऊँ के अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा बद्रीदत्त पाण्डे ग्रामीणों /किसानों के विरोध का अर्थ जायदा अच्छी तरह समझते थे। अल्मोड़ा के कुछ व्यक्तियों द्वारा सरकार को दिये गये ज्ञापन की निरर्थकता से परिचित पाण्डे तथा उसके सहयोगियों द्वारा सम्पूर्ण कुमाऊँ के विभिन्न गांवों में परिषद की शाखायें स्थापित करने के प्रयास किये गये। साथ ही उनके सामूहिक प्रयास से अल्मोड़ा से निकल रहे शक्ति पत्र में बेगार तथा नये वन नियमों की तीव्र आलोचना की गयी। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि स्वर्गीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत कई वर्षो तक इसके जनरल सेक्रेट्री रहे। कुमाऊँ परिषद् ने मुख्यतः निम्न कारणोंवश वन बन्दोबस्त का विरोध किया–

1. बन्दोबस्त अधिकारियों ने ग्रामीणों में प्रचलित प्राचीन प्रथाओं की कोई परवाह नहीं की।
2. विधायिका द्वारा निर्धारित नियमों के अधीन जंगलात के अधिकारों का विरोध नहीं किया गया। बन्दोबस्त अधिकारियों ने जनता के पारम्परिक अधिकारों तथा प्रस्तावित आरक्षित वनों की उपज को प्रयोग में लाये जाने विषयक कोई जांच नहीं की जबकि प्रत्येक व्यक्तिगत मामले को उसके गुण व अवगुण के आधार पर तय किया जाना था तथा विभिन्न गांवों की जरुरतों के विषय में भी कोई जांच नहीं की गयी।
2. जिन लोगों के पारम्परिक अधिकारों को अस्वीकार कर दिया गया था उन्हें कोई भी मुआवजा (क्षतिपूर्ति) नहीं दिया गया। अतः बन्दोबस्त अधिकारियों ने जनता एवं उसके अधिकारों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखी।
3. आबाद जमीन तथा मकान के आंगनों को आरक्षित वन क्षेत्र के अन्तर्गत लेने से भी जनता का विरोध व्यापक था।
   ब्रिटिश नीति लागू किये जाने से पूर्व खेती बढ़ाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था लेकिन फिर भी कुमाऊँ क्षेत्र अपनी सम्पूर्ण आबादी हेतु भोजन उपलब्ध कराने योग्य नहीं था। 1901 ई0 में अल्मोड़ा जनपद में ऐसी भूमि जिसमें की खेती की जा रही थी 463 (इसमें नैनीताल की पहाड़ी पट्टियों का क्षेत्र भी सम्मिलित था) वर्ग मील थी। वह पूर्णतया अपर्याप्त थी। गूज ने अपनी बन्दोबस्त आख्या में लिखा है कि यह मुश्किल से बढ़ा चढ़ा कर कहा हुआ माना जायेगा कि पहाड़ में सस्ता अनाज पैदा करने के उद्देश्य से खेती की जाती थी। जिन लोगों की आजीविका अन्य स्रोतों से थी तथा जो ऐसे क्षेत्रों मे रहते थे जहां गल्ले की कीमत काफी थी।
4. सरकार द्वारा लौहारों के लकड़ी तथा लकड़ी के छिलके (बग्गल) लाने के अधिकार को मानने से भी इनकार कर दिया था
5. लकड़ी लाने का अधिकार केवल सूखी एवं गिरी हुई लकड़ी लाने तक ही सीमित कर दिया गया था। जिन भागों में अधिकांशतः चीड़ के पेड़ थे जो कि सब्जी जैसी वस्तुओं को पैदा करने में बाधक थे। ऐसे क्षेत्रों में सूखी और गिरी हुई लकड़ियां यदा–कदा ही देखने को मिलती थी।

संक्षेप में सभा का विश्वास था कि यद्यपि जनता के अधिकारों को कागज में तो लिखा गया था लेकिन वन नीति को लागू करने वाले अधिकारियों ने जनता के अधिकारों को नहीं माना। स्थानीय ग्रामीणों के दृष्टिकोण से वन बन्दोबस्त के कार्य कलाप निम्न प्रकार थे–''एक कील के लिए जूते को खो दिया गया, एक घोड़े के लिए आदमी को खो दिया गया और एक आदमी की जरूरत के लिए राज्य को खो दिया गया।''

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

10 मार्च 1920 ई0 को अल्मोड़ा जिले का जंगल निम्नलिखित तीन डिवीजनों तथा 14 रेंजों में विभक्त किया गया।

		वर्ग मील
1.	रानीखेत डिवीजन (रेंज)	2.85
	(1) लोहवा	
	(2) जोरासी	
	(3) द्वाराहाट	
	(4) सिउनी	
	(5) रानीखेत	
2.	केन्द्रीय अल्मोड़ा डिवीजन	299
	(1) अल्मोड़ा	
	(2) सोमेश्वर	
	(3) देवलधार	
	(4) गैरखेत	
	(5) कपकोट	
3.	पूर्वी अल्मोड़ा डिवीजन	627
	(1) पिथौरागढ़	
	(2) जागेश्वर	
	(3) बेरीनाग	
	(4) लोहाघाट	
	कुल वर्ग मील	1211

1921 ई0 का वन आन्दोलन

जनवरी 1921 ई0 के उत्तरायणी मेले (बागेश्वर) के बाद कुमाऊँ परिषद् के तमाम नेताओं एवं प्रमुख कार्य कर्ताओं ने अल्मोड़ा जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में दौरे किये तथा विभिन्न स्थानों पर कुमाऊँ परिषद् की शाखाओं की स्थापना की। बेगार आन्दोलन की सफलता से प्रेरित बद्रीदत्त पाण्डे ने अपने भाषणों में वनाधिकारों की प्राप्ति के लिए सीधी कार्यवाही की अपील की। उन्होंने कहा कि वनों को बेचने वाली सरकार नहीं कही जा सकती। वनों को बेचकर सरकार स्वयं किसानों की नजरों में अपनी वैधता को समाप्त कर रही थी। इससे पूर्व बागेश्वर में स्पष्ट प्रतीकों में कहा गया था कि जब वनों पर अधिकार था, घास पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी, किसानों के पास खाने–पीने की कमी नहीं थी लेकिन अब वन विभाग घी की जगह लीसे के टिन देता है। बेगार आन्दोलन के बाद किसानों की मनःस्थिति को भापते हुये डायविल ने कहा था कि अगला आन्दोलन वन विभाग के विरुद्ध होगा, आन्दोलनकारी स्लीपर–चिरान तथा लीसा टिपान व गड़ान का कार्य करने वाले कुलियों को भगाने की कोशिश करेंगे। जनता को वन नियमों का उल्लंघन करने के लिए, उकसाया जायेगा तथा प्रशासन को अग्निकाण्डों की समस्या से जूझना होगा, और आगामी महिनों में वन नियमों के उल्लघंन की घटनाओं में रोज वृद्धि होती गयी इसमें घास के लिए वनों में आग लगाने के अलावा बड़ी संख्या में पेड़ों का काटा जाना भी शामिल था।

1921 ई0 में जबर्दस्त सूखा पड़ा। जाड़ों में वर्षा की कमी के कारण रबी की फसल भी नष्ट हो गयी थी अतः पहाड़ी जिलों में लोगों को तकावी ऋण दिये गये। आन्दोलन के एक प्रमुख केन्द्र टोटा शिंलग (सोमेश्वर घाटी में स्थित) में कुमाऊँ परिषद् की सभा ने प्रस्ताव किया था कि लोगों को स्वयं यह निर्णय करना कि सन् अस्सी सीमा के अन्दर वनों में आग लगायी जाय या नहीं। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में विशेष रूप से अल्मोड़ा जिले में वनों में आग लगाने का एक निश्चित अभियान शुरू किया गया। जब वन अधिनियम के सैक्शन 78 के अन्तर्गत ग्रामीणों से आग बुझाने में मदद करने को कहा गया तो ग्रामीणों द्वारा आग को ओर फैलाने में सहयोग दिया गया। फलस्वरूप वन विभाग द्वारा व्यापारिक उपयोग हेतु चुने गये वनों को बचाने के प्रयत्न भी निरर्थक सिद्ध हुये। अधिकांश वन नष्ट हो गये वन अपराधों की रोकथाम के लिए बना तन्त्र टूट गया।

इस आन्दोलन की अनेक विशेषताओं को सरकार द्वारा मात्र आगजनी की संज्ञा दी गयी थी। एक ओर यह व्यापारिक वानिकी के पक्ष में कम कर दिये गये जनता के पारम्परिक अधिकारों की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती थी, दूसरी ओर मुख्यतः लकड़ी और लीसे के लिए प्रयुक्त चीड़ के वनों को ही जलाया गया। यह आगजनी सरकार के लिए सीधी चुनौती थी कि वह वनों में अपना नियन्त्रण कम करे जैसा कि कमिश्नर विंडम ने भी स्वीकारा था। कुमाऊं के अन्य जिलों की तरह अल्मोड़ा में भी यह आन्दोलन मुख्यतः उन्हीं स्थानों पर तीव्र था जहां कि सड़कों का विस्तार था तथा जहां से वनों का व्यापारिक दोहन हो रहा था। इन अग्निकाण्डों में पूरे क्षेत्र के पुनर्जनित वन नष्ट हो गये। लगभग 820 वर्गमील वन क्षेत्र में फैली आग में चीड़ के पेड़ों में बने 11.50 लाख सीसा निकासी द्वार तथा 65 हजार मन लीसा नष्ट हो गया था। यह प्रमाण नहीं मिलता है कि सरकारी नियन्त्रण वाले अन्य चौड़ी पत्ती के वनों को नुकसान पहुंचा था। यह अग्निकाण्ड मात्र एक विनाशकारी अभिव्यक्ति नहीं था बल्कि यह अपने उद्देश्य को भली–भांति समझता था। जैसा कि ऐरिक हाब्सबाम का कहना है कि इस तरह का नुकसान अन्धाधुंध नहीं है। गरीब आदमी के लिए जो सबसे अधिक फायदेमंद हैं–इस मामले में चीड़ की अपेक्षा चौड़ी पत्ती वाले वन–उसे बचा लिया गया। लेकिन जैसा कि अल्मोड़ा के कलक्टर द्वारा किए गये कोर्ट केसों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि चीड़ के वनों को जलाने का कार्य औपनिवेशिक शासन से सीधी टक्कर थी। व्यापारिक उपयोग हेतु निश्चित चीड़ के वनों को जलाने के पीछे सिर्फ यही उद्देश्य नहीं था कि चीड़ की कोई स्थानीय उपयोगिता नहीं थी बल्कि जैसा बद्रीदत्त पाण्डे भी स्पष्ट समझते थे कि वन उत्पादों का सरकार द्व ारा विक्रय किसानों की जीवन यापन शैली के विरुद्ध था। कलक्टर द्वारा किये गये अग्निकाण्डों के वर्गीकरण में औपनिवैशिक सत्ता की किसी भी आन्दोलन को दबाने की इच्छा स्पष्ट दिखाई देती है। वर्गीकरण निम्न प्रकार था।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

अल्मोड़ा के अग्निकाण्ड के मामले 1921 ई0

	अग्निकाण्ड के प्रकार	मामलों की संख्या	सम्मिलित व्यक्तियों की संख्या
1.	जान बूझकर		
क.	बहुमूल्य वन क्षेत्रों को नष्ट कर वन विभाग को नुकसान पहुचाना	08	21
ख.	घृणा के कारण बदला लेकर वन विभाग को नुकसान पहुंचाना	26	45
ग.	पशुओं के लिए अच्छी घास लेना	11	17
घ.	शत्रुता के कारण लीसा मजदूरों को नुकसान पहुंचाना	02	03
ड.	शत्रुता के कारण दूसरों को नीचा दिखाना	03	05
च.	आन्दोलन के प्रत्यक्ष प्रभाव से अग्निकाण्ड	अनुपलब्ध	13
	कुल मामले	50	104
2.	अनजाने में		
	(इसमें आरक्षित वनों में धूमपान या आग ले जाने सरकारी नियन्त्रण से बाहर खेती योग्य बेकार भूमि से आग का फैलना आदि शामिल हैं)	23	45

इस आन्दोलन की प्रकृति के बारे में विस्तार से न्यायालयों के मामलों के वर्णन से जानकारी मिलती है। इस आन्दोलन में सिर्फ पुरुषों की ही हिस्सेदारी नहीं थी वरन् महिलाएं भी आगे आ रही थी। आन्दोलनकारियों ने अनेक मामले में सरकारी गवाहों को अपने पक्ष में ले लिया जिससे मुकदमें वापस लेने पड़े। तल्ला कत्यूर के डोबा गांव के चनर सिंह टंगणिया तथा अन्य चार ग्रामीणों ने असहयोग आन्दोलनकारियों तथा ए॰के॰ जोशी के भाषणों से प्रभावित होकर वनों में आग लगायी थी। कदाचित ग्रामीण अपने कार्यों के लिए धार्मिक–नैतिक मान्यता चाहते थे, यह भाव बेगार आन्दोलन में बागेश्वर में भी प्रकट हुये थे, लेकिन कत्यूर के ही पद्मसिंह तथा धरम सिंह जिन्होंने भी सरकार के एकाधिकार के विरुद्ध शाश्वत आवाज उठायी थी तथा जिन्हें सर्वाधिक सात साल की कठोर सजा दी गयी थी, को ऐसी किसी मान्यता की भी जरूरत नहीं थी। मजिस्ट्रेट के शब्दों में ''आग लगाया वन क्षेत्र गांव के पास था और ग्रामीणों द्वारा इसका उपयोग किया जाता था। वन विभाग के आगमन ने उनके द्वारा इस के उपयोग किये जाने में अवरोध डाला वे उसका विरोध करते थे।'' इसलिये उन्होंने जानबूझ कर आग लगाई। निःसन्देह अल्मोड़ा जनपद में सरकार द्वारा नियन्त्रित वनों को काफी क्षति पहुंचायी गयी तथा जनपद के निकटवर्ती क्षेत्रों में हुये अग्निकाण्ड सर्वाधिक भीषण थे।

1921 ई0 के वन आन्दोलन के परिणामस्वरूप 1921 ई0 में ही 'कुमाऊँ वन कष्ट समिति'' बनायी गयी। कुमाऊँ कमिश्नर विंढम, कन्जरवैटर आंफ फारेस्ट तथा जौधसिंह नेगी इस समिति के सदस्य थे। इस कमेटी में जोधसिंह नेगी एकमात्र गैर सरकारी सदस्य थे, लेकिन उन्हे जनता की अपेक्षा सरकार का पक्षधर माना जाता था। आन्दोलनकारियों द्वारा समिति के अध्यक्ष कमिश्नर विंडम की पहाड़ों में दो प्रमुख समुदायों–राजपूत तथा ब्राहमणों के बीच दरार डालने के लिए कड़ी आलोचना की गयी। विंडम को असली न्याय में अनभिज्ञ बताया गया। जनमत के प्रति उसकी उदासी का प्रत्यक्ष उदाहरण 1918 ई0 में उसके द्वारा बनायी गयी कुली बर्दायश रपट थी, जिसे उसने कुमाऊँ क्षेत्र की जनता की राय जाने बिना बना दिया। फलस्वरूप लोगों को बेगार के विरुद्ध प्रत्यक्ष आन्दोलन में आना पड़ा।

चूंकि समिति में जनता का कोई प्रतिनिधि नहीं था, अतः अनेक गांवों द्वारा समिति की बैठक के बहिष्कार का निर्णय लिया गया। मई से अगस्त 1921 ई0 के बीच समिति ने कुमाऊँ के अन्य जिलों की भांति अल्मोड़ा जिले का भी दौरा किया तथा लोगों से पूछताछ की। कटुता का एक प्रमुख स्रोत उन महिलाओं तथा बच्चों के प्रति किया गया दुर्व्यवहार था, जिन्होंने पर्याप्त वन अपराध किये थे लेकिन जो मान्यताओं के कारण न्यायालयों में उपस्थित नहीं हुये थे। वनाधिकारियों द्वारा उन्हें लकड़ी, घास आदि काटने से रोकने का भी विरोध किया गया। कुछ लोगों ने वनों की सीमा को खेतों के पास ले जाने का विरोध किया था तो कुछ और ने इसका विरोध अधिक भूमि पर अधिकार करने की इच्छा से नहीं बल्कि नियमों और नियन्त्रणों से मुक्ति के लिए किया था। सीमांकन पत्थरों का बार–बार खिसकाया जाना संरक्षण के बहाने किसान की स्वायत्तता तथा प्रभुसत्ता के लिए खतरा पैदा करने का प्रतीक था। इन परिस्थितियों में समिति इस नतीजे पर पहुंची कि वन नियमों का कड़ाई से लागू किया जाता अन्ततः दंगे और खून खराबे में बदल सकता है। इस समिति ने अब तक आरक्षित वनों को दो श्रेणियों में बांटने की सिफारिश की–श्रेणी ''एक'' में वे वन थे जिनकों उस समय व्यापारिक दृष्टिकोण से कीमती नहीं समझा जाता था। श्रेणी दो में वे वन थे जिनमें कि व्यापारिक महत्व की प्रजातियों के पेड़ थे।

श्रेणी ''एक'' के वनों में वन विभाग के नियन्त्रण को हटा दिया गया चाहे उनकी स्थिति आरक्षित वन की थी अथवा नहीं और इनके रख–रखाव का कार्य डिप्टी कमिश्नर को दे दिया गया। कुछ खास किस्म के पेड़ों को छोड़कर शेष किस्म के पेड़ों को गिराने, उनकी शाखाएं काटने तथा वहां पशुओं को चराने के लिए अनुमति बिना किसी प्रतिबन्ध के दे दी। यद्यपि श्रेणी दो के वन वन विभाग के नियन्त्रण में ही रहे तथापि इनमें जनता के कुछ अधिकार तथा सुविधाएं स्वीकार की गयी।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

1921 ई0 के पश्चात् हुये वन नीति विरोधी आन्दोलन

1921 ई0 के बाद भी छुट–पुट रूप से बन्दोबस्त होते रहे। 1930–31 ई0 में वनों में आग लगाने की घटनाएं पुनः हुई जिन्हें सरकार ने आगजनी या दुर्भाग्यपूर्ण अग्निकांडों की संज्ञा दी। 1930 ई0 की गर्मियों में बागेश्वर (जिला अल्मोड़ा) के पास पुनजर्नित वन क्षेत्र में आगजनी कांग्रेस के नेताओं की इच्छा के विरुद्ध था। 63 अग्निकाण डों में से 58 अल्मोड़ा के पूर्वी तथा पश्चिमी वन प्रभागों में हुये थे। 1921 ई0 में ग्रामीणों ने सरकार द्वारा नियन्त्रित क्षेत्र के सर्वाधिक क्षति पहुँचाये वाले हिस्सों को अपनी योजना का निशाना बनाया। अतः पुनर्जनित चीड़ के वनों का अधिकांश भाग जलकर नष्ट हो गया।

1931 ई0 का अभियान और अधिक व्यापक था तथा भीषण गर्मी के कारण भी आग फैलने में सहायता मिली थी। यह कहा गया था कि सूखा पड़ने वाले सालों में वनों को जलाना आसान है। साथ ही थोड़ी सी कोशिश से बड़े परिणाम निकल जाते थे। और यह किसी भी विरोध को प्रकट करने का सबसे आसान तरीका था यह प्रक्रिया किसी खास स्थान पर केन्द्रित नहीं थी वरन् सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में फैली थी। 89 अग्निकाण्डों में से 49 अग्निकाण्ड अल्मोड़ा में हुये थे।

अतः 1921 ई0 के बाद कुमाऊँ वन कष्ट समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप किसानों द्वारा प्राप्त अधिकारों के कारण बाद के सालों में आन्दोलनों में एक स्वाभाविक शिथिलता के दर्शन होते हैं। कुमाऊँ वन कष्ट समिति की सस्तुति पर 1930 ई0 में एक और कमेटी नियुक्त की गयी। उसे ''कुमाऊँ वन समिति'' कहा गया। यह प्रायः ''पार्लियामेण्ट आंफ कुमाऊँ'' के नाम से प्रसिद्ध रही, जो कुमाऊँ क्षेत्र के प्रशासन के लिए उत्सुक थी। इस कमेटी के एक सदस्य जिला परिषद् अल्मोड़ा के सदस्य भी थे। इस कमेटी के व्यापक अधिकार का और इसकी संतुतियों के आधार पर यह निर्णय किया गया कि वन विभाग द्वारा जिला परिषदों को दो लाख रू0 प्रति वर्ष दिया जाना चाहिए।

1951 ई0 में जंगलों की स्थिति

अ.	प्राचीन आरक्षित–	215 वर्गमील
ब.	नवीन आरक्षित–	
	1. श्रेणी ''ए''–	1777 वर्ग मील
	2. श्रेणी ''बी''–	1293 वर्ग मील
स.	सिविल जंगल–	128 वर्ग मील
द.	पंचायती जंगल–	560 वर्ग मील

1951 ई0 में जंगलों की स्थिति को निम्नलिखित प्रकार से दर्याया गया।

इस प्रकार केवल प्राचीन और श्रेणी ''बी'' के आरक्षित वनों को छोड़कर जनपद अल्मोड़ा सहित सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र में तकनीकी व वैज्ञानिक व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। इन वनों में लोगों के अधिकारों तथा सुविधाओं को नियमों में अंकित कर दिया गया।

अतः यह देखा जा सकता है कि लगातार प्रयासों के कारण वनों की रक्षा जो कि मैदानी भागों के लिए पानी के स्रोत थे, की सुरक्षा की गयी। इस बात के प्रति बड़ी सावधानी रखी गयी कि वन विभाग के अन्तर्गत जो आरक्षित वन थे उनमें भी बहुत कम प्रतिबन्ध लगाये जाय उदाहरण स्वरूप जब किसी भाग को जो कि चारागाह के नजदीक हो पौधे लगाने या उन पौधों को बड़ा करने के लिए बन्द करने की आवश्यकता हो तो उस प्रस्ताव को पहले डिप्टी कमिश्नर द्वारा संदर्भित किया जाए या जो कि स्थानीय जनता से परामर्श करने के पश्चात् ''नो ओबजेक्शन'' प्रमाणपत्र देता था तब इस प्रकार बन्द किये जाने वाले प्रस्तावों को कुमाऊँ फारेस्ट कमेटी के सामने प्रस्तुत किया जाता था जो कि अनन्तः स्वीकार कर्ता व प्राधिकारी थी। कमेटी को उन प्रस्तावों में से किसी एक या सब प्रस्तावों को नामंजूर कर देने का अधिकार था और इस प्रकार समस्त मामलों के विषय में अलग–अलग राय होने के कारण इन्हें सरकार के पास भेजा जाता था लेकिन अल्मोड़ा की जनता इन सब कार्यवाहियों से सन्तुष्ट नहीं थी वह चाहती थी कि उसे वैसे ही अधिकार प्राप्त हो जैसे–वन बन्दोबस्त से पहले प्राप्त थे।

वर्तमान समय में जब हम वनों की सुरक्षा व (चिपको आन्दोलन) का समर्थन करते है। आजादी के बाद जनता के विचारों में जंगलात के विषय में जो परिवर्तन आया है वह बहुत ही दिलचस्प है कि जब अंग्रेजों ने वनों की सुरक्षा से सम्बन्धित ऐसी ही नीति लगभग 100 वर्ष पूर्व जारी की थी तब उनकी बहुत अधिक आलोचना की गयी और अंग्रेजों की उस नीति के विरुद्ध अनेक प्रकार के आन्दोलन आरम्भ किये गये जैसा कि श्री गोविन्द बल्लभ पंत ने लिखा है कि–''कुमाऊँ में जो जंगलात विषयक नीति लागू की गयी वह पूर्णतया अरक्षणीय थी और अन्ततः दबाने वाली, कष्टदायक तथा निरर्थक थी यह टालने का प्रयास अदूरदर्शी योग्यता तथा नौकरशाही के प्रत्यक्ष चिन्ह हैं।'' आगे वे लिखते है ''वन विभाग की नीति को संक्षेप में दो शब्दों में कहा जा सकता है– अतिक्रमण और अपना।''

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है अंग्रेजों की वन नीति ने लोगों के लिए अनेक समस्यायें पैदा कर दी थी परन्तु वन उपज की चड़ती हुई मांग के कारण तथा संचार सुविधाओं में विकास के फलरूवरूप वनों ने राष्ट्रीय सम्पदा का रूप ले लिया था, अतः इस मूल्यवान सम्पदा को केवल मनमाने ढंग से उपयोग करने हेतु नहीं छोड़ा जा सकता था साथ ही वनों की सुरक्षा हेतु ब्रिटिश प्रशासकों के लिए यह आवश्यक था कि वे यहां के लोगों के वन विषयक परम्परागत अधिकारों में अतिक्रमण नहीं करते क्योंकि जीवन यापन के लिए पूरी तरह प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर अर्थव्यवस्था के लिए यह सर्वथा प्रतिकूल था। दूसरा उस समय अल्मोड़ा जनपद की अनपढ़ ग्रामीण जनता वनों के महत्व को नहीं समझती थी, अतः अंग्रेज अधिकारियों को चाहिए था कि वे अल्मोड़ावासियों को वनों के महत्व के विषय में बताते, किन्तु उन्होंने ऐसा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

तालिका नं॰–1

जनपद अल्मोड़ा में किसान परिवारों का पेशेवर विभाजन 1911–21 (श्रमिक आश्रित)

क्रम	वर्ग	जनपद अल्मोड़ा	
		1911	**1921**
1.	बटाई से प्राप्त आय पर निर्भर		
	अ. जमींदार	102	
	ब. खैकर	2	
	स. खुरनी	17	
	कुल	121	155
		0.03	0.03
2.	खुदकाश्त पर निर्भर प्राप्त आय वाले		
	अ. जमींदार	292649	
		66.6	
	ब. खैंकर	104793	
		23.85	
	स. खुरनी	34799	
		7.92	
	कुल	432241	448649
		98.37	99.11
3.	खेत मजदूर	3917	1744
		0.89	0.39
4.	गडरिये व चरवाहे	1507	642
		0.34	0.14
5.	अन्य (जंगलजाति मजदूर सहित)	609	642
		0.37	0.14
6.	खेतीहर पशुपालक	439395	452692
7.	कुल जनसंख्या	480167	485186
8.	7 के प्रतिशत के रूप में 6	91.51	93.30

स्रोत – भारत की जनगणना, 1911 व 1921

(1) असहयोग आन्दोलन के कारण 1921 में सरलतर वर्गीकरण अपनाया गया है।

(2) कोष्ठ की जनसंख्या कृषि की जनसंख्या का प्रतिशत इंगित करती है।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

तालिका नं॰ 2

1921 ई0 में जिले के 11 परगनों की बस्ती तथा कृषि सम्बन्धी आंकड़ें

क्र.	परगना	ग्राम संख्या	क्षेत्रफल	कृशि भूमि	जनसंख्या	बस्तीधनता	उपत्यकाएं
1.	पाली	1143	500	108	105505	313	रामगंगा, गगास, बगाढ़, देवगाढ़,
2.	फल्दो कोट	124	40	13ण्4	11299	282	कुचगर, सिरोंट
3.	गंगोली	570	300	42	41166	137	सरजू, रामगंगा
4.	काली कुमाऊँ	776	250	61ण्87	55569	210	करली, वनार लढ़िया, लोहावती
5.	वारा मण्डल	1058	400	62ण्5	109190	273	कोसी, सुवाल, गगास, पेनार, सई, जेंगर, मुनस्यारी तथा सरजू।
6.	सीरा	267	160	15	20498	130	कल्यानीगाढ़
7.	शोर	365	75	23ण्59	37253	940	कल्यानीगढ़ तथा चन्दभगा
8.	दानपुर	570	600	44ण्44	58212	97	गोमती, गरूड़ लाडूर, कतलगाढ़, पिण्डर, सरजू, रामगंगा।
9.	अस्कोट	142	400	6ण्49	19506	48	गोरी, काली, गाजीगाढ़, चरननगाढ़
10.	जौहार	213	.	.	15629	510	गोरी, रामगंगा
11.	दारमा	52	.	.	4516	510	काली, धोली

तालिका नं॰–3

संयुक्त प्रान्त में वन नियमों का उल्लघंन (1916–22)

क्र.	वृत्त	साल					
1.	पश्चिमी वृत्त						
	कुल मामले	1368	1242	1183	1162	926	1248
	दण्डित व्यक्ति	2517	2364	2058	2120	1618	2437
2.	पूर्वी वृत्त						
	कुल मामले	1636	1530	1723	1378	901	1622
	दण्डित व्यक्ति	2944	2777	3167	2733	2154	839
3.	कुमाऊँ वृत्त						
	कुल मामले	2023	2197	2166	2136	1723	2070
	दण्डित व्यक्ति	10264	11046	11024	13457	10328	3799

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104

स्रोत

संदर्भित सालों के वन प्रशासन की सालाना रपटें। कुमाऊँ

कुमाऊँ से तात्पर्य अल्मोड़ा नैनीताल तथा ब्रिटिश गढ़वाल जिलों से था।

सन्दर्भ

1. मोरलैण्ड, डब्ल्यू॰ एच॰ (1913), एग्रीकल्चरल कन्डीसन्स एण्ड प्राब्लम आफ दि यू॰ पी॰ एण्ड इट्स डिस्ट्रिक्ट्स गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, पृ॰ 1
2. वाल्टन, एच॰जी॰ (1928), अल्मोड़ा गर्जेटियर, पृ॰ 57–58
3. पातीराम (1916), गढ़वाल–एनशियेन्ट एण्ड माडर्न, पृ॰ 58
4. पन्त, एस॰डी॰ (1935), शोसल इकानॉमी आफ दि हिमालया, पृ॰ 76
5. सिम्पल, ई॰सी॰ (1911), इनफ्लूएन्स आफ ज्योग्रैफिकल इनवायरमेंट, पृ॰ 79
6. गूज, जे॰ई॰ (1902), कुमाऊँ सेटिलमेंट रिपोर्ट, पृ॰ 12
7. पियर्सन, जी॰एफ॰ (1869), रिपोर्ट आन दि फारेस्ट आफ कुमाऊँ एण्ड गढ़वाल, पृ॰ 1
8. एटकिन्सन, ई॰टी॰ (1973), दि हिमालयन गजेटियर, वाल्यूम–1, पृ॰ 849
9. नैविल, एच॰आर॰ (1922), दि नैनीताल गजेटियर, पृ॰ 7
10. एनुअल रिपोर्ट (1901), दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ फारेस्ट, पृ॰ 2
11. पांडे, बद्रीदत्त (1937), कुमाऊँ का इतिहास, अल्मोड़ा, पृ॰ 469
12. अल्मोड़ा स्मारिका (1976), पृ॰ 469
13. अल्मोड़ा अखबार, 10 अक्टूबर, 1907
14. पाठक, शेखर (1987), उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, दिल्ली, पृ॰ 112
15. हाब्सवाम (1964), दि मशीन ब्रैकर्स, पृ॰ 10
16. शक्ति साप्ताहिक, 8 फरवरी, 1921 ई॰
17. एनुअल रिपोर्ट आफ दि फारेस्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन यू॰पी॰ 1951, पृ॰ 39

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202104